प्राथमिक शिक्षा का यथार्थ

❑ डा. सौभाग्यवती

ग्रामीण अंचलों में प्राथमिक शिक्षा का यथार्थ धरातल की तरह ही खुरदरा, धूसर और बदरंग है । स्वतंत्रता के उपरान्त गठित भारत की संविधान निर्मात्री सभा के दिनों से ही आरंभिक शिक्षा की उपलब्धता को लेकर संकल्प और घोषणाओं का सिलसिला शुरू हो गया था जो अनवरत जारी है । इधर प्राथमिक शिक्षा के फैलाव की देशव्यापी मुहिम छिड़ी है लेकिन क्या बहुतेरे स्कूल अथवा 'शिक्षा केन्द्र' खोल देने से 'शिक्षा की गारंटी' हो जायेगी, इसे लेकर संदेह का कुहासा घिरा है । सबके लिए शिक्षा की उपलब्धता के लिए क्या इसे 'सस्ता' कर देने का यह तरीका कारगर है ? असल में, शिक्षा, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा को लेकर राज्य सत्ता का रुख आरंभ से ही अस्थिर और संदिग्ध रहा है ।

हमारे संविधान निर्माताओं ने शिक्षा के मुद्दे को अहमियत देते हुए 1950 में यह लक्ष्य निर्धारित किया था कि 1960 तक दस वर्ष से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दे दी जायेगी, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। इसलिए 1965 में समय सीमा बढ़ाकर 1975-76 कर दी गई, परन्तु जब इस समय के अन्दर भी लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया तब राष्ट्रीय नीति संबंधी योजना के अनुसार 1995 तक उक्त लक्ष्य को हासिल करना निश्चित किया गया, लेकिन वह भी अभी अधूरा ही है । अब हाल ही में नौवी योजना (1997-2002) के प्रारूप को केन्द्र सरकार की स्वीकृति मिल गई है, जिसके अन्तर्गत प्रधानमंत्री की विशेष कार्य योजना के लिए 21,946 करोड़ रुपये आवंटित किये गए हैं ।

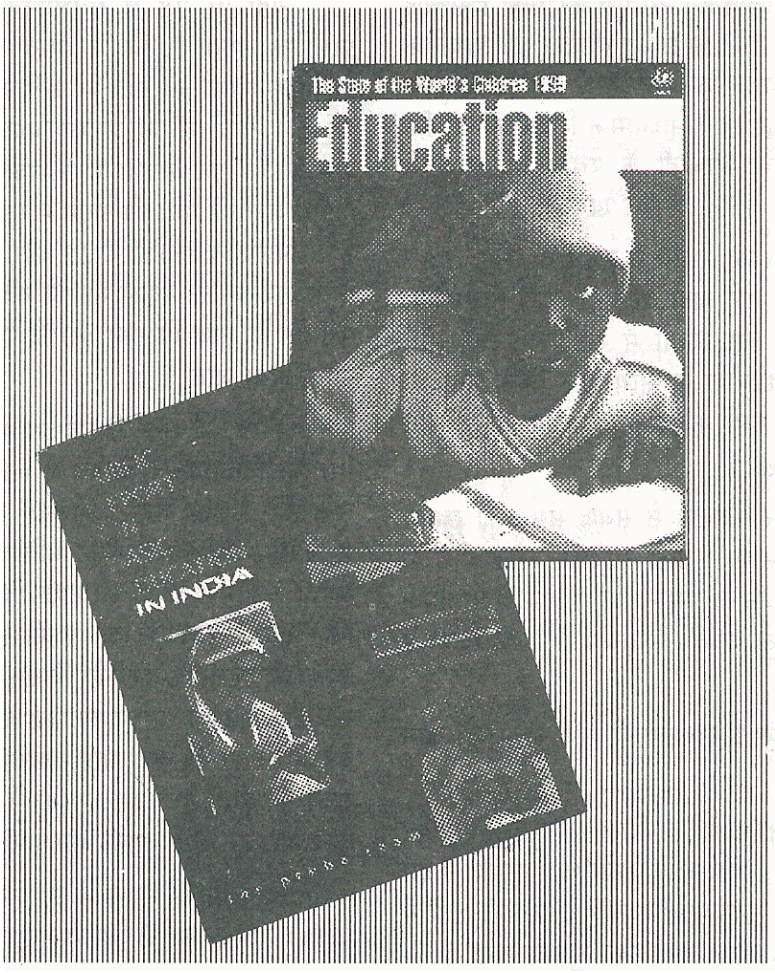

यह अत्यन्त शुभ समाचार है कि नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्यसेन के लोककल्याणकारी दर्शन से प्रभावित हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने आम आदमियों की जरुरत से संबंधित कार्य योजना के प्रति विशेष रुचि दिखाई है, जिसमें खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि, कृषि, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य और पीने का स्वच्छ पानी जैसे विषय शामिल हैं । अब हम आशा कर सकते हैं कि प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य कारगर तरीके से पूरा हो जायेगा ।

पिछले पचास वर्षों की शैक्षणिक यात्रा का लेखा-जोखा करने पर हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि केन्द्रीय सरकार में विशेषतया प्रारंभिक शिक्षा के प्रति ऐसी इच्छाशक्ति नहीं रही जैसी अपेक्षित थी। एक सुनिश्चित दिशा का निर्धारण हम इसलिए भी नहीं कर सके कि हमने इस तथ्य को नजरन्दाज कर दिया कि विश्व के जिन देशों ने भी साक्षरता के लक्ष्य को पूरा किया है वे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को सामने रख कर ही ऐसा कर पाये हैं। चीन, दक्षिण कोरिया, और ताइवान जैसे देश इसके उदाहरण हैं । वर्तमान में भारत की साक्षरता की दर 52 प्रतिशत है, जबकि अल्प विकसित अफ्रीका की

साक्षरता दर 57 प्रतिशत है । और हमारे पड़ौसी पूर्व एशियाई देशों में लगभग 84 प्रतिशत साक्षरता है ।

यूनिसेफ के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में 47 प्रतिशत बच्चे ही पांचवी कक्षा तक पहुंच पाते हैं, शेष 53 प्रतिशत चौथी कक्षा में जाते-जाते पढ़ाई छोड़ देते हैं । पढ़ाई छोड़ने वालों में बालिकाओं की संख्या बालकों की अपेक्षा ज्यादा होती है । ग्रामीण लड़कियों तथा उनसे भी अधिक जनजातीय लड़कियों की संख्या पढ़ाई छोड़ने वालों में सर्वाधिक पाई जाती है । यही कारण है कि पुरुष और स्त्री के साक्षरता अनुपात में भारी अन्तर पाया जाता है। राजस्थान में पुरुष साक्षरता 47.64 प्रतिशत के मुकाबले स्त्री साक्षरता का 11.68 प्रतिशत होना, इसका एक उदाहरण है।

ऐसा नहीं है कि साक्षरता और शिक्षा के प्रति हमारे यहां कुछ किया ही नहीं गया। राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की 43 वीं बैठक में यह परिकल्पना की गई थी कि प्रारंभिक शिक्षा और साक्षरता का लक्ष्य साथ साथ प्राप्त कर लिया जाये, जिससे 35 वर्ष तक की आयु तक का कोई भी व्यक्ति निरक्षर न रहे । यद्यपि यह लक्ष्य हमारी आठवीं योजना का अंग था । लेकिन क्या हम उसे पूरा कर सके? सच्चाई यह है कि हमने स्वाधीनता प्राप्ति के प्रथम चौबीस वर्ष प्राथमिक शिक्षा के नाम पर खपा दिये लेकिन फलितार्थ यह निकला कि प्राथमिक शिक्षा की कीमत पर हमने माध्यमिक शिक्षा को तरजीह दी । अब स्थिति यह है कि आजादी के पचास वर्ष बाद भी प्राथमिक शिक्षा हमारे समक्ष चुनौती बनकर खड़ी है ।

देश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति में सुधार के लिए 1987 में शिक्षा की दृष्टि से बीमार माने जाने वाले (बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) चार राज्यों में आप्रेशन ब्लैक बोर्ड नामक अभियान बेहद जोशोखरोश के साथ शुरू किया गया था लेकिन अनेक मूलभूत सुविधाओं की कमी के कारण वह वांछित परिणाम देने में विफल ही रहा ।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय से संबद्ध संसद की स्थायी समिति ने बस्ते का बोझ कम करने वाले आप्रेशन ब्लैक बोर्ड के प्रोजेक्ट के संदर्भ में समीक्षा करने के उपरान्त अपनी रपट में प्राथमिक शिक्षा और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों के संबंध में स्पष्ट किया है कि-

• स्कूल के माहौल के प्रति छात्रों में कोई रुचि नहीं जाग पाई।

• अनेक बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा के दरवाजे इसलिये बन्द रहे कि स्कूल खोलने के नियम अति कठोर थे । समिति ने इस समस्या के समाधान के लिए सुदूर पर्वतीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों में स्कूल खोलने के नियम और सरल बनाने का सुझाव दिया ।

• प्रोजेक्ट की विफलता का मुख्य कारण शिक्षकों में उत्साह की कमी भी थी । समिति ने पाया कि अधिकांश राज्यों में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है ।

• उक्त संदर्भ में समिति ने अनुशंसा की कि राष्ट्रीय शिक्षण परिषद और राज्य परिषदें मिलकर शिक्षक प्रशिक्षण का एक पायलट प्रोग्राम नमूना चलायें ।

• शिक्षकों पर इतना कार्यभार था कि उसके कारण वे उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों का उपयोग नहीं कर सके, इससे शिक्षकों में जोश कम पैदा हुआ ।

• 80 प्रतिशत उपस्थिति का नियम शिथिल कर देने से सिर्फ (मध्यान्ह भोजन) जिसकी जगह सूखा अनाज दिया जाता था, वितरण के दिन ही उपस्थिति ज्यादा होती थी ।

• समिति ने समस्याग्रस्त क्षेत्रों में शिक्षाकर्मी और लोकजुम्बिश जैसी परियोजनाओं के माध्यम से राज्यों में स्कूल चलाने का सुझाव दिया ।

यहां पर 78 वें संवैधानिक संशोधन का उल्लेख करना प्रासंगिक लगता है, जिसके अन्तर्गत स्वायत्तशासन की शृंखला में प्राथमिक शिक्षा को गांव के अधिकार क्षेत्र में लाने की बात कही गई है । ठीक इसी के अनुरूप मध्यप्रदेश में शिक्षा गारन्टी योजना शुरू की है । इस योजना की विशेषता यह है कि इसमें स्थानीय और क्षेत्रीय जनों की मांग को ध्यान में रखकर स्कूल खोलने की व्यवस्था है । जनजातीय इलाकों में 25 और सामान्य क्षेत्रों में यदि 40 पढ़ाई के इच्छुक व्यक्ति स्कूल खोलने की इच्छा जाहिर करें तो स्थानीय पंचायत के साथ मिलकर 90 दिनों में प्रशासन की ओर से स्कूल खोल दिया जाता है ।

1997 में शुरू की गई इस योजना के अन्तर्गत एक साल में 40 स्कूल प्रतिदिन के हिसाब से 15568 स्कूल अब तक खोले जा चुके हैं । 'शिक्षा गारन्टी योजना' यद्यपि अभी परीक्षण के दौर में है जिसका फलितार्थ निकट भविष्य में आंका जा सकेगा लेकिन जनता की मांग और सरकारी नियन्त्रण से मुक्ति जैसी जमीनी विशेषताओं के कारण यह काफी लोकप्रियता प्राप्त कर रही है । स्कूल की इमारत बनाने और शिक्षक बनने योग्य किसी स्थानीय गुरू को खोज लाने का काम पंचायत करती है । उस गुरु को प्रशिक्षण देने और वेतन देने तथा पाठ्यसामग्री उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी राज्य की होती है । दूसरे शब्दों में निरक्षर जन समुदाय की शिक्षा व्यवस्था, उसकी निगरानी और समीक्षा स्थानीय लोगों के सुपुर्द है।

हाल ही में भारत में प्राथमिक शिक्षा पर प्राथमिक रिपोर्ट (प्रोब) सामने आई है जिसमें मुख्य संकेत इस दिशा में किया गया

है कि निशुल्क शिक्षा का नारा भी ज्यादा हितकर सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि राज्य की ओर से मुफ्त शिक्षा देने पर प्रति बालक पर हर वर्ष 318 रुपये खर्च बैठता है, लेकिन उसके बाद भी जीविका की गारन्टी नहीं हो पाती । ऐसे में भारत जैसे गरीब देश के लिए मुफ्त शिक्षा योजना लागू करना फायदेबन्द नहीं है । प्रोब ने यह भी खुलासा किया है कि ब्रिटिश काल का घिसा पिटा पैटर्न आज के सन्दर्भ में सर्वथा बेमानी है । पाठ्यसामग्री में रोचकता, प्रासंगिकता और रोजगार की गारन्टी जैसी विशेषताएं परिलक्षित होनी चाहिए।

वस्तुस्थिति यह है कि हमने गत पचास वर्षों में प्रारंभिक शिक्षा के संचालन में आनेवाली कमियों और बाधाओं को सूझबूझ एवं जनवादी दृष्टि से समझने की कोशिश नहीं की । भारत जैसे विभिन्न संस्कृतियों वाले देश में स्कूल खोलने से पहले स्थानीय परिवेश, जन-मन की रुचियों और अपेक्षाओं को सावधानी से समझना-बूझना होगा ।

अधिक संख्या में जहां तहां स्कूल खोल देने से बड़ी तादाद में बच्चे पढ़ाई करने के लिए भागे चले आयेंगे, यह सोचना सर्वथा असंगत है, और हमने ऐसा ही किया है । इसके साफ परिणाम सामने हैं। गांवों के देश भारत में हजारों ऐसे स्कूल हैं, जहां कोई आधारभूत ढांचा ही नहीं है । यदि स्कूल है तो अध्यापक नहीं हैं, अध्यापक है तो छात्र न्यूनतम हैं । कहीं एक ही कमरे में एक ही अध्यापक दो तीन कक्षाओं को घेरे हुए है । कहीं इमारत के ऊपर छत ही नहीं है तो कहीं जमींन पर बैठकर बच्चे पढ़ाई कर रहे हैं । यह भी देखा गया है कि कई बार बच्चे अध्यापक के साथ उसके गांव में खेती का काम कराने चले जाते हैं । यही हमारी प्राइमरी शिक्षा का सच है ।

यह अत्यन्त गौरतलब है कि 'आप्रेशन ब्लैक बोर्ड' की विफलता पर रपट देने वाली समिति ने लोकजुम्बिश जैसी जिस योजना की सराहना की है । वह जनता के बीच बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है । ज्ञातव्य है कि इस योजना के माध्यम से ग्रामीण काम काजी बच्चों के लिए सहज शिक्षा केन्द्रों का संचालन किया गया है । राजस्थान में इन सहज शिक्षा केन्द्रों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उक्त शिक्षा शालाओं में स्वयं सेवी शिक्षकों द्वारा जो जमीनी प्रयास किये जा रहे हैं वे ग्रामीण और जनजातीय पिछड़े क्षेत्रों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं ।

इस शिक्षा प्रयोग में स्थानीय जनता से विचार विमर्श करके रात्रिशालाएं स्थापित की जाती हैं । शाला का स्थान, समय और पठन सामग्री गांव के लोगों और शिक्षक दोनों की सहमति से तय की जाती है । स्थानीय लोकगीत और लोकजीवन की अनुकूलता की कहानियां बच्चों को सुनाकर रुचिकर माहौल तैयार किया जाता है, पर्यावरण-अध्ययन और खेती तथा पशु पालन संबंधी बातों को बच्चे बहुत ध्यान से सुनते हैं । यह अत्यंत गंभीर और विचारणीय बात है कि इस प्रकार के प्रयासों में बेहद त्याग-तपस्या वाले और मशक्कत करने वाले शिक्षकों की जरुरत है । अपनी भौतिक सुख सुविधाओं को तिलांजलि देकर निजी व्यक्तित्व को गरीब लोगों के जीवन में समाहित कर देना और उनको सुनहरे भविष्य की ओर ले जाने का संकल्प प्रस्तुत करना वर्तमान में अत्यन्त कठिन है । यदि प्रशासन चाहे तो इस तरह के असाधारण लेकिन सहज शिक्षा केन्द्रों को चलाने की दिशा में अग्रसर हो सकता है । यह मनन और चिन्तन का विषय है ।

इधर कुछ समय से संस्कृति के नाम पर अंधराष्ट्रवादी विचारों का प्रचार शिक्षा के माध्यम से किया जा रहा है । विद्या भारती एक अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान है जो तथाकथित हिन्दुत्ववादी नागरिकों द्वारा संचालित है और पूरे देश में जिसके लगभग 6000 स्कूल चल रहे हैं । बाल शिशुनिकेतन और मॉडल स्कूलों के नाम से इन शिक्षा केन्द्रों में कट्टरतावादी विचारधारा को बच्चों के गले उतारने का प्रयास किया जाता है । उदाहरण के लिए इनकी पुस्तकों में -

पाकिस्तान के अलावा बांग्लादेश, तिब्बत, नेपाल, भूटान और श्रीलंका के इलाके पुण्यभूमि भारत के हिस्से के रूप में नक्शे में दर्शाये गये हैं । इस नक्शे में अरब सागर को सिन्धु सागर और बंगाल की खाड़ी को गंगा सागर तथा हिन्द महासागर को हिन्दू महासागर नाम दिया गया है। इस तरह स्कूली पाठयक्रमों में धर्म विशेष का कोर्स निर्धारित कर देने से अन्य धर्मों के प्रति नफरत और द्वेष पैदा होता है । प्राथमिक स्तर पर स्कूली बच्चों को धर्म-दर्शन की कट्टरतावादी घुट्टी पिलाने से धर्म निरपेक्षता की जड़ें कमजोर होती हैं । शिक्षा को आग्रह मुक्त होकर साम्प्रदायिकता से सर्वथा दूर रहना चाहिये ।

उपर्युक्त खामियों पर दृष्टिपात करते हुए हमारे शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों और चेतनाशील देश प्रेमी नर नारियों का यह कर्तव्य बनता है कि वे मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिलाने की प्रशासन से पुरजोर मांग करें । सुनने में आया था कि वर्षों से लंबित पड़े मौलिक अधिकार वाले विधेयक को संयुक्त मोर्चा सरकार ने ठंडे बस्ते से निकालने की कोशिश की थी लेकिन वह ज्यादा टिक नहीं पाई । हमें शिक्षा को वैचारिक स्तर के साथ साथ जनान्दोलन के रूप में एकजुट और एकाग्रमन से मानवीय धरातल पर उतारना होगा । ◆